(डॉ. महादेव साहा बनारसीदास चतुर्वेदी (बाएं को ब.दा.च. और दाएं कुछ समझाते हुए से डॉ. साहा) से बात करते हुए । आठवें दशक में किसी दिन हम लोग दिल्ली से गए थे फिरोजाबाद, उ.प्र. उनके निवास पर मिलने । पृष्ठभूमि में हैं रमेश उपाध्याय,चतुर्वेदी जी के सुपुत्र और मैं ।)

डॉ. महादेव साहा

[पहले कोरिया प्रवास (1999–2002) के दौरान लोकसभा के भूतपूर्व स्पीकर कामरेड सोमनाथ चटर्जी विश्व फुटबाल फाइनल देखने जब सिओल आए तो डॉ.महादेव साहा की मृत्यु का दुखद समाचार उन्होंने दिया । स्मृति में यह वहीं लिखा गया ।

डॉ. महादेव साहा

सन 2002 की गर्मियों में मार्क्सवादी पार्टी के वरिष्ठ नेटा सोमनाथ चटर्जी विश्व फुटबाल के फाइनल मुकाबले देखने दक्षिण कोरिया की राजधानी सिओल आए तो मुझे सुखद आश्चर्य हुआ । भेंट हुई और बहुत से साझा परिचय के लोगों की बातें हुईं । साहा का नाम आते ही उन्होंने वह दुखद सूचना दी कि हाल ही में दिल्ली में उनका देहान्त हो गया है । हमारी कल्पना से बाहर था यह सोचना भी कि साहा भी कभी मर सकते हैं । हम जानते थे कि उनकी उम्र किसी भी हिसाब से ज्यादा है,शायद 80-90 के भी पार । उनकी मानें तो लगता 1857 का संग्राम भी उनका देखा हुआ था । लेकिन उनके साथ मृत्यु को जोड़ना ही असंभव लगता । इसीलिए उनकी बातचीत को रिकार्ड करने की योजनाएं टलती जातीं कि जल्दी क्या है,कभी भी कर लेंगे । इसलिए इस समाचार को जज्ब करना मुश्किल हुआ ।

क्या जानकारी का वह संपूर्ण भंडार चला गया जिसे केवल साहा ही दे सकते थे ?

साहा गांधी के दांडी मार्च में उनके साथ चल रहे लोगों की याद ताजा करते हैं । छोटा कद काठी,खादी का कुर्ता,ऊंची बंधी धोती,पीछे को कसकर बहाए हुए बाल,प्रमुखता लिए हुए खिचड़ी भंवें,गोल फ्रेम के मोटे शीशे वाले चश्मे के पीछे गोलाकार उभरी आंखें और चेहरे पर दृढ़ता की पथरीली खिंचन । चलने और दौड़ने के बीच की गति वाली चाल । धीरे-धीरे साहा का यह बिम्ब एक तेज गति की अमूर्तता में तब्दील हो जाता है । वह एक ऊर्जा के प्रतीक में बदल जाता है ।

साहा घुमा-फिराकर अपना चित्रण करते हैं,किस्सों-कहानियों में । एक बार अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर क्रान्तिकारियों में अच्छी ख्याति पाए एम.एन.राय जब भारत आए तो उन्हें अपने सैद्धान्तिक ज्ञान पर बहुत भरोसा था और इसमें वे यहां के गंवार से दिखते गांधी के अनुयायियों को देख बहुत निराश हुए कि ये भला क्या करेंगे । साहा जैसे किसी ने उन्हें बताया कि कामरेड ये जो क्षीणकाय लघु रूप ग्रामीण से जन तुमको दिखते हैं ये तुमसे ज्यादा सिद्धान्त समझते हैं । सिद्धान्त के साथ ये जन को भी समझते हैं । तुम केवल एक समझते हो ।

जब वे ऐसे किस्से सुना रहे होते तो लगता अपने बारे में ही बता रहे हैं । बीड़ी के हर कस में एक पूरी दास्तान छिपी होती है जिसे वे अपने सामने साक्षात देख रहे होते हैं घटते ।

जैसे वे बहुत सारी किंवदंतियों के जनक हैं,वैसे ही उनके बारे में भी बहुत सी किंवदंतियां प्रचलित हैं ।

साहा के परिवार की मूल जड़ें तो पूर्वी उत्तर प्रदेश या बिहार के मिले इलाके में हैं लेकिन उनकी मुख्य कार्यभूमि पश्चिम बंगाल ही रहा । वहीं की पार्टी से वे जुड़े रहे । बंगाल के कामरेड लोग उनके बारे में कई किस्से सुनाते हैं । एक उनके भूमिगत दिनों का है । एक बार की बात है कि खुफिया पुलिस को शक हो गया कि आगे जाने वाला व्यक्ति साहा है । वह लग लिया उनके पीछे । रास्ता शहर छोड़ गांव की ओर निकल गया लेकिन साहा थे कि रुकने का नाम ही नहीं ले रहे । चलते-चलते खुफिया का तो बुरा हाल । अन्त में थक हार कर बैठ गया तो साहा ने दूर से ही चिल्लाकर कहा कि फलां जगह जा रहा हूं,आ जाना ।

मतलब कि चलने में उन्हें कोई मात नहीं दे सकता ।

एक दूसरा किस्सा है उनके विश्वकोश होने के बारे में। कहा जाता है कि जब भी पार्टी की पालिट ब्यूरो या केन्द्रीय कमेटी की बैठक होती तो बगल के कमरे में साहा को बिठा लिया जाता। न जाने कब किस जानकारी की जरूरत पड़ जाय। वे चलता-फिरता विश्वकोश ठहरे। बल्कि अनेक मायनों में तो उससे भी आगे। यानी कम्युनिस्ट आन्दोलन से जुड़ी कोई घटना ऐसी नहीं जिसके बारे में उन्हें विस्तार से न मालुम हो। बैठकों में जब भी किसी बात पर शक हुआ या तथ्यों की जरूरत पड़ी तो बगल के कमरे से साहा को बुला लिया जाता।

ऐसी विशद और तीक्ष्ण स्मृति वाला व्यक्ति दुर्लभ है। इसका थोड़ा व्यक्तिगत अनुभव मुझे उस समय हुआ जब मैं उनके पास प्रगतिशील आन्दोलन सम्बन्धी पुस्तक लेकर गया। उन्होंने बैठे-बैठे ही पन्ने पलटने शुरू किए और एक-एक तथ्यात्मक गलतियां गिनाने लगे। फिर बोले कि इसमें समय लगेगा इसलिए किताब छोड़ जाओ,मैं निशान लगाकर ठीक कर दूंगा। अगले संस्करण में सुधार लेना। ऐसी कई अन्तराष्ट्रीय खयातिप्राप्त लोगों की पुस्तकें देखीं जिन्होंने दूसरे संस्करण की भूमिका में भूल सुधारों के लिए साहा का धन्यवाद ज्ञापन किया।

ऐसा अद्‌भुत जीवट वाला,ऐसी आश्चर्यजनक स्मृति वाला,ऐसा कर्मठ,ज्ञान-विज्ञान में ऐसा पारंगत व्यक्ति देश या समाज के किसी बड़े काम नहीं आ सका,यही विस्मयकारक है। स्वयं पार्टी में उनकी हैसियत एक सलाहकार कार्यकर्ता से अधिक कभी कुछ नहीं रही। ऐसा क्यों हुआ। उनकी प्रतिभा और ज्ञान का लाभ उठाकर बहुत कुछ किया जा सकता था।

ऐसा नहीं हो पाया। उन्हें देखकर कोई भी बता सकता था कि वे सब चीजों को इतना अच्छी तरह जान चुके हैं कि अब उनकी वास्तविक दिलचस्पी किसी चीज में नहीं रह गई है। दिल्ली पार्टी के दफ्तर में बैठे थे तो देखा कि साहा से मिलने एक बहुत ही सुंदर,जिज्ञासु कन्या उन्हें ढूंढते आई। अपने शोध के सिलसिले में विशेष रूप से उनसे मिलने भारत आई थी। बहुत ही विनम्रता और भक्तिभाव से उनका गुणगान कर रही थी। लेकिन साहा थे कि कलकत्ता पार्टी के हिंदी अखबार 'स्वाधीनता' में ऐसे रमे थे कि एक बार भी आंख उठाकर नहीं देखा, न कुछ जवाब ही दिया। जब वह समय मांगने लगी तो बहुत ही रूखे से बोले कि ये किताब नेहरू म्यूजियम पुस्तकालय में हैं और उससे भी पहले तुम्हारे फलां विश्वविद्यालय के पुस्तकालय में हैं, जाकर देख लो, मेरे पास इन बातों के लिए समय नहीं है। बहुत देर तक वह बेचारी दुखी मन से बैठी रही कि शायद पसीज जाएं और मान जायं। लेकिन साहा थे कि अखबार में फिर मस्त।

आखिर हार कर वह चली गई। स्वयं हमें उनका यह व्यवहार बहुत गलत लगा। बाद में हमने पूछा कि थोड़ा समय देने में क्या हर्ज था तो बोले कि ये सोवियत वाले कोई अकादमिक जिज्ञासा से नहीं आते। उनके मकसद अपने व्यक्तिगत राजनीतिक उल्लू सीधा करने होते हैं। मैं क्यों मोहरा बनूं।

पार्टी को मानते रहे,लेकिन जानते रहे कि अब इनसे कुछ होने जाने वाला नहीं है। ये सब सुविधाभोगी लोग हैं जो किसी क्रांति के लिए थोड़े ही पार्टी चला रहे हैं। कई बार ज्योति बसु जब दिल्ली में पार्टी दफ्तर आते तो उनके आगे-पीछे कई गाड़ियां होतीं,साथ में बहुत सारे पार्टी और तन्त्र के कारकून होते। साहा इस सबको देख बड़बड़ाते रहते कि देखो ये कामरेड हैं,ये क्रांति करेंगे। पार्टी के लोग अपने बच्चों को अमेरिका यूरोप पढ़ने भेजते तो साहा बड़बड़ाते कि ये साम्राज्यवाद के विरुद्ध लड़ेंगे। वे शायद बोल बोलकर थक गए थे और शान्त हो गए थे। उन्हें लग गया था कि यह सब अब ऐसे ही चलेगा।

इस सब ने उन्हें लगभग सिनिक बना दिया था। वे बहुत कम लोगों को पसन्द करते,तारीफ तो और भी कम लोगों की करते,सम्पर्क तो और भी सीमित लोगों से रखते। वे जिन लोगों की प्रशंसा करते उनमें एक नाम था मुंशी प्रेमचंद की पत्नी शिवरानी देवी का,जिन्हें साहा अम्मा कहकर याद करते। जब तक वे जीवित थीं साहा उनसे अक्सर मिलने पहुंच जाते। क्योंकि वे अमृतराय के पास रहती थीं इसलिए इस प्रशंसा का थोड़ा बहुत हिस्सा उनके हिस्से भी पड़ जाता। एक थे स्वामी विवेकानन्द के बड़े भाई भूपेन्द्रनाथ दत्त,जिन्हें वह वास्तविक क्रान्तिकारी मानते। जब तक बनारसीदास चतुर्वेदी जीवित रहे तब तक उनसे मिलने भी वे फिरोजाबाद अक्सर जाते। विश्वंभरनाथ पांडे का नाम भी वे बिना बुराई किए लेते।

जबकि ऐसे लोगों की एक लंबी सूची थी जिनकी निन्दा का कोई अवसर वे नहीं चूकते थे। इनमें कुछ तो ऐसे थे जिनके नाम से ही वे बहुत कुपित हो जाते। इनमें इन्दिरा गांधी का नाम सर्वोपरि था। उसके बाद जवाहरलाल नेहरू का नाम आता था। साहित्यकारों में इस सूची में सबसे ऊपर नाम होता हजारी प्रसाद द्विवेदी का और दूसरे नम्बर पर उनके ही एक शिष्य का। कुछ लोग ऐसे थे जिनकी वे आलोचना तो करते थे लेकिन वह एकदम सैद्धान्तिक थी। व्यक्तिगत रूप में वे उनमें से कई को आलोचना के बावजूद पसन्द करते थे। इनमें से एक थे क्रान्तिकारी भगत सिंह,दूसरे राहुल सांकृत्यायन।

उनकी बातों में बहुत कुछ तो भंडाफोड़ नुमा होता और बहुत सी कड़ुवाहट होती। हिन्दी के आधुनिक युग की शुरूआत के लिए कोई भारतेन्दु का नाम लेता तो वे जोर से विरोध करते और कहते कि साहित्य का सारा विमर्श बहुत ही सीमित और पिछड़ा हो गया है। उनके अनुसार, विज्ञान में जब एक बार कोई शोध सामने आ जाता है तो उस पर बाकी हजारों लोगों द्वारा किए जा रहे समानान्तर प्रयास बेमानी हो जाते हैं। उसके बाद अगर कोई फिर से उसी बात को सिद्ध करे तो यह हास्यास्पद माना जाएगा। लेकिन हिन्दी में यही हो रहा है। एक के बाद एक हर कोई उसी पुरानी सिद्ध बात को दुहरा कर समझता है कि तीर मार रहा है। सवाल है कि ज्ञान और विचार का विकास जहां तक हो चुका था देश में भारतेन्दु के पहले,उसके आगे जाना चाहिए था,न कि उससे पीछे। भारतेन्दु में जितना कन्फ्यूजन है उससे तो यही लगता है कि या तो बन्दा शुतुरमुर्ग था या कूपमंडूक। अगर बाहर ध्यान दिया होता तो पता चलता कि बेटा तुम जो बात कर रहे हो उससे बहुत आगे बात चली गई है। और यह हमारी कूपमंडूकता और शुतुरमुर्गपन का सबूत है कि हम भी भारतेन्दु-भारतेन्दु रटे जा रहे हैं। पश्चिम बंगाल में क्या ईश्वर चंद्र,क्या राममोहन राय,क्या डेविड हेयर विचार के सिलसिले को अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर ले गए थे। और तो और,बाद में राष्ट्रवाद की झोंक में पगला गया बंकिम तक एक जमाने में साम्य के विचार की बात कर चुका था। और फिर भी यह भारतेन्दु था कि मीलों पीछे की बातों के पिष्टपेषण में ही मौलिकता समझ रहा था।

एक बार वे शुरू हो जाते तो उन्हें रोकना मुश्किल था। यह एक खांटी विवेकवादी,तर्कशील,वास्तविक अर्थों में आधुनिक व्यक्ति का विश्लेषण होता या उत्तर-अधुनिक शब्दावली में कहें तो विखंदन होता जिसे यूं ही निरस्त नहीं किया जा सकता था। वह हमारी पूर्वाग्रही आस्थाओं और अंध भक्तियों पर जबरदस्त प्रहार होता और हम तिलमिला जाते।

लेकिन चाहे कोई कितना भी पूजनीय,सम्माननीय,महान हो,साहा बख्शते किसी को नहीं थे। इसकी कुछ बानगियां यहां प्रस्तुत हैं :

स्वाधीनता संगाम के क्रान्तिकारी शहीद भगतसिंह को साहा कुछ उत्साही युवक की तरह पेश करते। उनको लेकर एक किस्सा वे अक्सर सुनाते :

एक बार की बात है कि जब क्रान्तिकारी के रूप में भगतसिंह का बहुत नाम हो गया तो उन्होंने सोचा कि अब क्यों न मैं क्रान्तिकारियों के परदादा भूपेन्द्रनाथ दत्त से भी अपनी प्रशंसा

में कुछ सुन आऊं । सो भगत सिंह पहुंचे भूपेन्द्रनाथ से मिलने । भूपेन्द्रनाथ ने उन्हें कोई भाव नहीं दिया,न कुछ बोले । भगत सिंह ने जब अपने कामों के बारे में बताया तब बोले -'देखो बेटा तुम जो यह अंटी में तमंचा लिए घूमते हो और समझते हो दो-चार तमंचाधारियों को लेकर क्रान्ति कर ले जाओगे ?यह देश बहुत विशाल है जिसमें लाखों मजदूर किसान हैं । जब तक ये लोग उठकर खड़े नहीं हो जाते तब तक कुछ नहीं हो सकता । तुम्हारी हीरोगिरी से यह काम होने वाला नहीं है । अगर काम का कुछ काम करना चाहते हो तो यह तमंचा बाजी छोड़कर इस जनता को संगठित करो । यह मुश्किल काम है और बड़े धैर्य की अपेक्षा करता है । इस काम में वैसा मजा भी नहीं,न वैसी फटाफट प्रसिद्धि ही जैसी तमंचाबाजी में सहज मिल जाती है । '

और फिर साहा जोड़ते कि मालुम नहीं उसकी समझ में कुछ आया कि नहीं । एक बार जिसे तमंचागिरी और सनसनीखेज का चस्का लग गया तो वह फिर राह पर नहीं आता । कुछ सनसनीखेज कर गुजरने की फिराक में ही रहता है । वही उसने किया ।

जवाहरलाल नेहरू के बारे में भी किस्सा भूपेन्द्रनाथ दत्त से जुड़ा है । कहते :

कि जब देश आजाद हो गया और नेहरू प्रधानमंत्री बन गए तो आशीर्वाद लेने भूपेन्द्रनाथ दत्त के पास गए जो देहरादून में थे । बोले कि दादा देश की सेवा करके मैं भी कुछ बन गया हूं । अब मुझे बताइए कि देश की और लोगों की सेवा के लिए क्या कुछ करूं ?इस पर भूपेन्द्रनाथ दत्त बहुत कुपित होकर बोले – "By all your deeds,you have amply proved that you are the true defender of the interests of the Jamindars,the capitalists and imperialists. Now you have got a position in the government to fulfil your goals. So serve the interets of your masters well."

इसके बाद दत्त फिर नहीं बोले और नेहरू चुपचाप उठकर चले आए ।

राहुल सांकृत्यायन के प्रति साहा का दृष्टिकोण जहां आलोचनात्मक था,वहीं व्यक्तिगत रूप में उन्हें वे बहुत चाहते भी थे । राहुल के चारित्रिक और वैचारिक स्खलन की कड़ी आलोचना वे करते लेकिन सुना कि राहुल की सेवा भी उन्होंने बड़ी की । उनके अन्तिम समय में साहा ही उनके पास थे। हमने जब उनसे पूछा कि राहुल के इतने आलोचक होने पर भी वे उन्हें इतना प्रेम कैसे दे सके तो साहा का कहना था कि राहुल को पार्टी में वे लेकर आए थे । राहुल बेहद प्रतिभाशील और कर्मठ व्यक्ति थे । अगर उनके दिमाग में बेहूदा विचलन पैदा नहीं होतीं

तो वे पार्टी के लिए इतना काम कर जाते जितना कोई नहीं कर पाया । इसीलिए मैं अन्त तक इस प्रयास में था कि उनका विचलन दूर हो या कम स कम उनका उपयोग शत्रु न करें ।

और भी अनगिनत किस्से हैं इस तरह के । उनकी कठोरता और आत्मीयता अति की होती । लेकिन इसके पीछे कोई व्यक्तिगत दुर्भावना या पूर्वाग्रह नहीं थे । यह शुद्ध वैचारिक थे । जिनके वे आलोचक थे उनकी आलोचना का कोई मौका नहीं चूकते । जिनको पसन्द करते थे उनके लिए कुछ भी करने को तैयार हो जाते । पार्टी में बी.टी.रणदिवे के प्रति वैसा ही ममत्व का भाव उनमें दिखता था ।

इधर के साहित्य से जुड़े लोगों में बंगाल के जिन कामरेडों के साथ वे स्वाधीनता के दफ्तर में घंटों बिताते उनमें इसराइल,अरुण माहेश्वरी,अयोध्या सिंह तो थे ही,विमल वर्मा भी स्नेह की इस छांव में थे । बाद में जब वे दिल्ली में लम्बे समय के लिए रहने लगे तो अक्सर शिकायत रहती कि यहां के लोग विचित्र हैं । फिर भी चन्द्रबली सिंह और मुझ पर उनकी विशेष ममता बनी रही । हम दोनों जब विट्ठलभाई पटेल हाउस में जनवादी लेखक संघ के दफ्तर में रात गए तक बैठ रिपोर्ट लिख रहे होते या प्रस्तावों का मसविदा बना रहे होते तो साहा बीच-बीच में चुपके से उठकर चले जाते और कभी चाय तो कभी कुछ खाने को लेकर आते । यह देख हम अन्दर तक भीग जाते ।

वे केवल अपने पसंदीदा लोगों के घर ही जाते थे,अन्यथा सार्वजनिक स्थलों पर ही लोगों से मिल लेते । उनकी पसन्द के कुछ घरों की खबर मुझे भी थी और दो जगह तो मैं उनके साथ जाकर रहा भी था । इलाहाबाद में अमृतराय का घर,फिरोजाबाद में बनारसीदास चतुर्वेदी का घर । एक दिन अचानक उनका फोन आया कि वह चन्द्रबली को लेकर मेरे घर आ रहे हैं और एक-दो रोज ठहरेंगे । मुझे तो विश्वास ही नहीं हुआ । यह तो जैसे छप्पर फाड़ कर मिली कृपा थी । ऐसा सम्मान जो किसी-किसी को ही प्राप्त था । वे दो दिन तक अतिथि की तरह रहे । इन दो दिनों के लिए हमारा घर तो तीर्थ बन गया ।

किसी को नहीं मालुम कि उनका जन्म कहां हुआ,कब हुआ । उनका बात करने का तरीका ऐसा था जिससे लगता कि वे शायद सौ बरस से भी पहले पैदा हुए होंगे । जवाहरलाल नेहरू को कभी नाम लेकर याद नहीं करते थे बल्कि 'मोतिया का बेटा जवाहर'कहकर याद करते । इससे लगता जैसे मोतीलाल नेहरू उनके साथ के होंगे और नेहरू छोटे । इस हिसाब से तो उन्हें सौ से

भी ऊपर होना चाहिए। एक बार हमने साहस करके पूछा कि दादा आप अब कितने बरस के हो गए। उन्होंने इसका सीधे जवाब नहीं दिया। बोले कि बन्दे के परिवार वाले 1857में लड़कर मर मिटे तो जो बचे वे कलकत्ता चले आए। बस उसी में यह बचा है। यह तो भला हो कि उन्होंने यह नहीं कहा कि बन्दा खुद 1857में लड़ा था। तो इस हिसाब से उनका जन्म 19वीं शताब्दी के अन्त में ही हुआ होगा। उस हिसाब से सौ के पार तो हो ही गए।

इतना ज्ञान का भंडार लिए थे और भाषाशास्त्र में तो विशेषज्ञता थी। बड़े नामी-गिरामी लेखकों की किताबों की भूलों को ठीक किया था। फिर भी उनका लिखा मामूली सा ही देखने में आया। उसे भी संकलित करने की कोई आकांक्षा तो जाने दीजिए, उसका जिक्र तक कभी नहीं किया। कहीं कुछ तो ऐसा हुआ होगा कि किसी भी सार्थक माने जाने वाले कर्म से ही उनका विश्वास डिग गया। कौन जाने।

न लिखा हो,न सही। हम समझते थे कि उनकी बातों को रिकार्ड करके ही उनके ज्ञान को प्रकाशित कर देंगे। इसमें भी देर कर दी और वे नहीं रहे।

उनकी चाल और सेहत को देखकर कोई कह ही नहीं सकता था कि वे कभी बूढ़े भी होंगे।